Chapter आठ

क्षीरसागर का मन्थन

इस अध्याय में बताया गया है कि किस तरह समुद्र मन्थन के दौरान लक्ष्मीजी प्रकट हुईं और उन्होंने विष्णुजी को किस तरह अपना पति स्वीकार कर लिया। आगे चलकर इस अध्याय में बताया गया है कि जब अमृत-पात्र लेकर धन्वन्तरि प्रकट हुए तो असुरों ने तुरन्त ही वह पात्र उनसे छीन लिया, किन्तु भगवान् विष्णु मोहिनी के रूप में प्रकट हो गए। मोहिनी संसार की सर्वाधिक सुन्दर स्त्री थी और असुरों को मोहने तथा देवताओं हेतु अमृत बचाने के लिए प्रकट हुई थी।

जब शिवजी सारा विष पी गये तो देवता तथा असुर दोनों में उत्साह बढ़ा और उन्होंने मन्थन का कार्य फिर शुरू कर दिया। इस मन्थन से, पहले एक सुरभि गाय उत्पन्न हुई। महान् साधु पुरुषों ने इस गाय को स्वीकार किया जिससे उन्हें इसके दूध से घी मिल सके और जिससे वे महान् यज्ञों में इस घी की आहुतियाँ दे सकें। तत्पश्चात् उच्चै:श्रवा नामक घोड़ा उत्पन्न हुआ। इस घोड़े को बलि महाराज ने ले लिया। तब ऐरावत तथा अन्य हाथी प्रकट हुए जो किसी भी दिशा में कहीं भी जा सकते थे। तत्पश्चात् हथिनियाँ भी प्रकट हुईं। कौस्तुभ नामक मणि भी उत्पन्न हुआ जिसे विष्णु ने लेकर अपने वक्षस्थल पर धारण कर लिया। फिर पारिजात पुष्प तथा ब्रह्माण्ड की सुन्दरतम स्त्रियाँ, अप्सराएँ, उत्पन्न हुईं। तब लक्ष्मीजी निकलीं जिनकी पूजा देवताओं, महान् ऋषियों, गन्धर्वों तथा अन्यों ने आदर सहित की। लक्ष्मीजी को ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जिसे वे पति रूप में स्वीकार करतीं। अन्ततोगत्वा उन्होंने भगवान् विष्णु को अपना स्वामी चुना। भगवान् विष्णु ने उन्हें सदा-सदा के लिए अपने वक्षस्थल पर रहने का स्थान दे दिया। लक्ष्मी तथा नारायण के इस मिलन से वहाँ पर उपस्थित देवता तथा अन्य सामान्य लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए। किन्तु असुरगण लक्ष्मीजी द्वारा उपेक्षित होने के कारण अत्यधिक हताश थे। फिर वारुणी अर्थात् सुरापान की देवी उत्पन्न हुई और भगवान् विष्णु के आदेश से असुरों ने

उसे स्वीकार कर लिया। तब असुर तथा देवता नवीकृत उत्साह से पुन: मन्थन करने लगे। इस बार भगवान् विष्णु के अंशावतार धन्वन्तरि प्रकट हुए। वे अत्यन्त सुन्दर थे और अमृत से युक्त एक पात्र लिये हुए थे। असुरों ने उनके हाथ से तुरन्त ही वह पात्र छीन लिया और भागने लगे। देवतागण अत्यन्त खिन्न होने के कारण विष्णु की शरण में गये। धन्वन्तरि से अमृत-पात्र छीनने के बाद असुरगण परस्पर लड़ने लगे। भगवान् विष्णु ने देवताओं को सान्त्वना प्रदान की जिससे वे लड़े नहीं अपितु मौन रहे। जब असुरगण परस्पर लड़ रहे थे तो साक्षात् भगवान् मोहिनी अवतार के रूप में प्रकट हुए जो ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक सुन्दरी थी।

श्रीशुक उवाच
पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवा: ।
ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पीते—पी लिये जाने पर; गरे—विष; वृष-अङ्केण—बैल पर बैठने वाले शिवजी द्वारा; प्रीता:—प्रसन्न होकर; ते—वे सब; अमर—देवतागण; दानवा:—तथा असुरगण; ममन्थु:—पुन: मथने लगे; तरसा—बड़े वेग से; सिन्धुम्—क्षीरसागर को; हविर्धानी—सुरभि गाय जो घी देने वाली है; तत:—उस मन्थन से; अभवत्—उत्पन्न हुई।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : शिवजी द्वारा विषपान कर लिये जाने पर देवता तथा दानव दोनों ही अत्यधिक प्रसन्न हुए और नवीन उत्साह के साथ समुद्र का मन्थन करने लगे। इसके फलस्वरूप सुरभि नामक गाय उत्पन्न हुई।

तात्पर्य : *सुरभि* गाय को *हविर्धानी* कहा गया है क्योंकि वह मक्खन प्रदान करती है। मक्खन को पिघलाने से घी बनता है, जो बड़े-बड़े अनुष्ठानिक यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए अनिवार्य होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१८.५) में कहा गया है—*यज्ञदानतप:कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्*—मानव समाज में शान्ति तथा समृद्धि बनाये रखने के लिए यज्ञ, दान तथा तपस्या अनिवार्य कर्म हैं। यज्ञ अनिवार्य है; यज्ञ करने के लिए घी नितान्त आवश्यक है और घी के लिए दूध आवश्यक है। दूध तभी उत्पन्न होता है जब पर्याप्त गौवें हों। अतएव *भगवद्गीता* (१८.४४) में गोरक्षा की संस्तुति की गई है (*कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्*)।

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिन: ।

यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस गाय को; अग्नि-होत्रीम्—अग्नि में आहुति के लिए मट्ठा, दूध तथा घी प्राप्त करने के लिए आवश्यक; ऋषयः—यज्ञ करने वाले ऋषियों ने; जगृहुः—भार सँभाला; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक अनुष्ठानों को जानने वाले; यज्ञस्य—यज्ञ का; देव-यानस्य—स्वर्ग तथा ब्रह्मलोक जाने की इच्छा को पूरी करने वाला; मेध्याय—आहुति डालने के योग्य; हविषे—घी के लिए; नृप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित! वैदिक अनुष्ठानों से सुपरिचित ऋषियों ने उस सुरभि गाय को ले लिया जो अग्नि में आहुति डालने के लिए नितान्त आवश्यक मट्ठा, दूध तथा घी उत्पन्न करने वाली थी। उन्होंने शुद्ध घी के लिए ही ऐसा किया क्योंकि उन्हें उच्चलोकों में ब्रह्मलोक तक जाने के लिए यज्ञ सम्पन्न करने के लिए घी की आवश्यकता थी।

तात्पर्य : *सुरभि* गाएँ सामान्यतया वैकुण्ठ लोकों में पाई जाती हैं। जैसाकि *ब्रह्मसंहिता* में वर्णन आया है, भगवान् कृष्ण अपने लोक गोलोक वृन्दावन में सुरभि गाएँ पालने में व्यस्त रहते हैं (*सुरभीरभिपालयन्तम्*)। ये गाएँ भगवान् की पालतू गाएँ हैं। सुरभि गायों से चाहे कोई कितना ही दूध ले सकता है और जितनी बार चाहे उन्हें दुह सकता है। दूसरे शब्दों में, सुरभि गाय असीम मात्रा में दूध दे सकती है। यज्ञ सम्पन्न करने के लिए दूध आवश्यक है। मुनिगण जानते हैं कि मानव समाज के जीवन को पूर्ण बनाने के लिए दूध का प्रयोग किस तरह किया जाये। चूँकि शास्त्रों में सर्वत्र गोरक्षा की संस्तुति की गई है अतएव *ब्रह्मवादियों* ने *सुरभि* गाय का भार सँभाला क्योंकि असुरों की विशेष रुचि उसमें नहीं थी।

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ।
तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; उच्चैःश्रवाः नाम—उच्चैश्रवा नाम का; हयः—घोड़ा; अभूत्—उत्पन्न हुआ; चन्द्र-पाण्डुरः—चन्द्रमा की भाँति श्वेत; तस्मिन्—उसको; बलिः—बलि महाराज ने; स्पृहाम् चक्रे—पाने की इच्छा प्रकट की; न—नहीं; इन्द्रः—देवताओं का राजा; ईश्वर-शिक्षया—भगवान् की पहले की सलाह के कारण।

तत्पश्चात् चन्द्रमा के समान श्वेत रंग का उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा उत्पन्न हुआ। बलि महाराज ने इसे लेना चाहा। स्वर्ग के राजा इन्द्र ने इसका विरोध नहीं किया क्योंकि भगवान् ने पहले से ही उन्हें ऐसी सलाह दे रखी थी।

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ।
दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ऐरावतः नाम—ऐरावत नामक; वारण-इन्द्रः—हाथियों का राजा; विनिर्गतः—निकला; दन्तैः—अपने दाँतों सहित; चतुर्भिः—चार; श्वेत—सफेद; अद्रेः—पर्वत के; हरन्—मात करते हुए; भगवतः—शिवजी का; महिम्—यश, महिमा।

मन्थन के फलस्वरूप अगली बार हाथियों का राजा ऐरावत उत्पन्न हुआ। यह हाथी श्वेत रंग का था और अपने चारों दाँतों के कारण यह शिवजी के यशस्वी धाम कैलाश पर्वत की महिमा को भी मात दे रहा था।

ऐरावणादयस्त्वष्टौ दिग्गजा अभवंस्ततः ।
अभ्रमुप्रभृतयोऽष्टौ च करिण्यस्त्वभवन्नृप ॥ ५॥

शब्दार्थ

ऐरावण-आदयः—ऐरावण इत्यादि; तु—लेकिन; अष्टौ—आठ; दिक्-गजाः—ऐसे हाथी जो किसी भी दिशा में जा सकते थे; अभवन्—उत्पन्न हुए; ततः—तत्पश्चात्; अभ्रमु-प्रभृतयः—अभ्रमु नामक हथिनी तथा अन्य; अष्टौ—आठ; च—भी; करिण्यः—हथिनियाँ; तु—निस्सन्देह; अभवन्—उत्पन्न हुईं; नृप—हे राजा।

हे राजा! इसके बाद आठ बड़े-बड़े हाथी उत्पन्न हुए जो किसी भी दिशा में जा सकते थे। उनमें ऐरावण प्रमुख था। अभ्रमु आदि आठ हथिनियाँ भी उत्पन्न हुईं।

तात्पर्य : आठों हाथियों के नाम थे—ऐरावण, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त, सार्वभौम तथा सुप्रतीक।

कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः
तस्मिन्मणौ स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे हरिः ।
ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम्
पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ॥ ६॥

शब्दार्थ

कौस्तुभ-आख्यम्—कौस्तुभ के रूप में विख्यात; अभूत्—उत्पन्न हुआ; रत्नम्—बहुमूल्य मणि; पद्मरागः—पद्मराग नामक रत्न; महा-उदधेः—महान् क्षीरसागर से; तस्मिन्—उस; मणौ—मणि में; स्पृहाम् चक्रे—पाने की अभिलाषा की; वक्षः-अलङ्करणे—अपने वक्षस्थल को अलंकृत करने के लिए; हरिः—भगवान् ने; ततः—तत्पश्चात्; अभवत्—उत्पन्न हुआ; पारिजातः—पारिजात नामक स्वर्गिक पुष्प; सुर-लोक-विभूषणम्—स्वर्गलोक को विभूषित करने वाला; पूरयति—पूरा करता है; अर्थिनः—धन की इच्छा रखने वाले; यः—जो; अर्थैः—अर्थ (इच्छित) के द्वारा; शश्वत्—सदैव; भुवि—इस लोक पर; यथा—जिस तरह; भवान्—आप (महाराज परीक्षित)।

तत्पश्चात् महान् समुद्र से विख्यात रत्न कौस्तुभ मणि तथा पद्मराग मणि उत्पन्न हुए। भगवान् विष्णु ने अपने वक्षस्थल को अलंकृत करने के लिए इसे पाने की इच्छा व्यक्त की। तब पारिजात

पुष्प उत्पन्न हुआ जो स्वर्ग लोकों को विभूषित करता है। हे राजा! जिस प्रकार तुम इस लोक के प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाएँ पूरी करते हो उसी तरह पारिजात हरएक की इच्छाओं को पूरा करता है।

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ।
रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—भी; अप्सरसः—अप्सरालोक के वासी; जाताः—उत्पन्न हुए; निष्क-कण्ठ्यः—सुनहरे हारों से अलंकृत; सु-वाससः—सुन्दर वस्त्र पहने; रमण्यः—अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक; स्वर्गिणाम्—स्वर्गलोक के निवासियों का; वल्गु-गति-लीला-अवलोकनैः—मन्द गति से चलती हुई सबके हृदयों को आकृष्ट करतीं।

अप्सराएँ (जो स्वर्ग में वेश्याओं की तरह रहती हैं) प्रकट हुईं। वे सोने के आभूषणों तथा गले की मालाओं से पूरी तरह सजी हुई थीं और महीन तथा आकर्षक वस्त्र धारण किये थीं। अप्सराएँ अत्यन्त मन्दगति से आकर्षक शैली में चलती हैं जिससे स्वर्गलोक के निवासी मोहित हो जाते हैं।

ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ८॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—तथा; आविरभूत्—प्रकट हुई; साक्षात्—प्रत्यक्ष; श्री—धन की देवी; रमा—रमा नामक; भगवत्-परा—भगवान् के प्रति पूर्णतया अनुरक्त; रञ्जयन्ती—प्रकाशित करती; दिशः—सभी दिशाओं को; कान्त्या—कान्ति से; विद्युत्—बिजली; सौदामनी—सौदामनी; यथा—जिस तरह।

तब धन की देवी रमा प्रकट हुईं जो भगवान् द्वारा भोग्या हैं और उन्हीं को समर्पित रहती हैं। वे बिजली की भाँति प्रकट हुईं और उनकी कांति संगमरमर के पर्वत को प्रकाशित करने वाली बिजली को मात कर रही थीं।

तात्पर्य : *श्री* का अर्थ है ऐश्वर्य। कृष्ण समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

यह विश्व-शान्ति का गुर *भगवद्गीता* (५.२९) में दिया हुआ है। जब लोग जान जाएँगे कि भगवान् कृष्ण ही परम भोक्ता हैं, परम स्वामी तथा समस्त जीवों के परम सुहृद हैं, तो सारे विश्व में

शान्ति तथा समृद्धि निश्चित रूप से छा जाएगी। दुर्भाग्यवश, बद्धजीव भगवान् की बहिरंगा शक्ति द्वारा भ्रम में पड़े रहने के कारण एक दूसरे से लड़ना-झगड़ना चाहते हैं जिससे शान्ति भंग होती है। शान्ति के लिए पहली शर्त है कि श्री या धन की देवी द्वारा प्रदत्त सारी सम्पत्ति भगवान् को अर्पित की जाये। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह संसारी सम्पत्ति के अपने झूठे स्वामित्व को त्याग दे और प्रत्येक वस्तु कृष्ण को अर्पित करे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन की यही शिक्षा है।

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ।
रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उसके लिए; चक्रुः—की; स्पृहाम्—इच्छा; सर्वे—हर कोई; स-सुर-असुर-मानवाः—देवता, असुर तथा मनुष्य समेत; रूप-औदार्य—अपूर्व सौन्दर्य तथा शारीरिक स्वरूप के द्वारा; वयः—तारुण्य; वर्ण—रंग; महिमा—यश; आक्षिप्त—क्षुब्ध; चेतसः—मन वाले।

उनके अपने अपूर्व सौन्दर्य, शारीरिक स्वरूप (गठन), तारुण्य, रंग तथा यश के कारण हर व्यक्ति, यहाँ तक कि देवता, असुर तथा मनुष्य उनको पाने की कामना करने लगे। वे इसीलिए आकृष्ट थे क्योंकि रमादेवी समस्त ऐश्वर्यों की उद्गम हैं।

तात्पर्य : इस संसार में ऐसा कौन होगा जो धन, सौन्दर्य तथा इन ऐश्वर्यों से मिलने वाले सामाजिक सम्मान का भूखा न हो? लोग सामान्यतया भौतिक भोग, भौतिक ऐश्वर्य तथा उच्चकुलीन परिवार के सदस्यों की संगति चाहते हैं (*भोगैश्वर्य प्रसक्तानाम्*)। भौतिक भोग का अर्थ है धन, सौन्दर्य तथा इनसे मिलने वाला यश जो धन की देवी की कृपा से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। किन्तु धन की देवी कभी अकेली नहीं रहती। जैसाकि पिछले श्लोक में *भगवत्-परा* शब्द से सूचित होता है, वे भगवान् की सम्पत्ति हैं और उन्हीं के द्वारा भोग्या हैं। यदि कोई धन की देवी, माता लक्ष्मी की कृपा का इच्छुक है, तो उसे चाहिए कि वह उन्हें नारायण के साथ रखे क्योंकि वे स्वभाव से *भगवत्-परा* हैं। जो भक्त सदैव नारायण की सेवा में लगे रहते हैं (*नारायणपरायण*) उन्हें निश्चय ही धन की देवी की कृपा प्राप्त हो सकती है, किन्तु जो भौतिकतावादी उन्हें निजी भोग के लिए प्राप्त करना चाहते हैं, वे निराश होते हैं। उनकी यह नीति ठीक नहीं है। उदाहरणार्थ, सुप्रसिद्ध असुर रावण रामचन्द्र को लक्ष्मी अर्थात् सीताजी से विहीन करके विजयी बनना चाहता था, किन्तु परिणाम उल्टा निकला। भगवान् रामचन्द्र ने निस्सन्देह, सीता को बलपूर्वक ले लिया और रावण अपने समूचे भौतिक साम्राज्य सहित विनष्ट हो

गया। धन की देवी सबके लिए, जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं, अमीष्ट हैं, किन्तु मनुष्य को यह समझना चाहिए कि धन की देवी केवल भगवान् की ही सम्पत्ति है। कोई भी व्यक्ति धन की देवी का तब तक कृपापात्र नहीं बन पाता जब तक वह उनकी तथा परम भोक्ता भगवान् दोनों की स्तुति नहीं करता।

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ।
मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके लिए; आसनम्—आसन; आनिन्ये—ले आया; महा-इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र; महत्—यशस्वी; अद्भुतम्—विचित्र; मूर्ति-मत्यः—रूपों को स्वीकार करते हुए; सरित्-श्रेष्ठाः—विविध पवित्र नदियों में श्रेष्ठ; हेम—सुनहरे; कुम्भैः—जलपात्रों द्वारा; जलम्—जल; शुचि—शुद्ध।

स्वर्ग का राजा इन्द्र लक्ष्मीजी के बैठने के लिए उपयुक्त आसन ले आया। पवित्र जल वाली सारी नदियाँ—यथा गंगा तथा यमुना-साकार हो उठीं और उनमें से हर एक माता लक्ष्मी के लिए सुनहरे जलपात्र में शुद्ध जल ले आईं।

आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ।
गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

आभिषेचनिकाः—अर्चाविग्रह की स्थापना के लिए आवश्यक साज-सामग्री; भूमिः—भूमि ने; आहरत्—एकत्र की; सकल—सभी तरह की; औषधीः—औषधियाँ तथा जड़ीबूटियाँ; गावः—गाएँ; पञ्च—गाय से प्राप्त होने वाले पाँच प्रकार के पदार्थ यथा दूध, मट्ठा, घी, गोबर तथा गोमूत्र; पवित्राणि—अकलुषित; वसन्तः—साक्षात् वसन्त ऋतु; मधु-माधवौ—वसन्त ऋतु अथवा चैत्र और वैशाख मास में उत्पन्न होने वाले फल तथा फूल।

भूमि ने साकार होकर अर्चाविग्रह की स्थापना के लिए जड़ीबूटियाँ एकत्र कीं। गायों ने पाँच प्रकार के उत्पाद दिए—दूध, मट्ठा, घी, गोमूत्र तथा गोबर और साक्षात् वसन्त ऋतु ने चैत्र-वैशाख (अप्रैल तथा मई) मास में उत्पन्न होने वाली हर वस्तु को एकत्र किया।

तात्पर्य : वैदिक निर्देशों के अनुसार सम्पन्न होने वाले समस्त अनुष्ठानों में *पञ्चगव्य* अर्थात् गाय से प्राप्त पाँच पदार्थों—दूध, मट्ठा, घी, गोबर तथा गोमूत्र—की आवश्यकता होती है। गोमूत्र तथा गोबर कल्मषहीन होते हैं और चूँकि ये दोनों भी महत्त्वपूर्ण हैं अतएव मानव सभ्यता के लिए इस पशु की उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिए भगवान् कृष्ण गोरक्ष्य अर्थात् गाय-संरक्षण के पक्षधर हैं। जो सभ्यलोग वर्णाश्रम पद्धति का अनुसरण करते हैं, विशेष रूप से कृषि तथा व्यापार में

लगा रहने वाला वैश्य वर्ग, उन्हें चाहिए कि गायों को संरक्षण प्रदान करें। दुर्भाग्यवश कलियुग में लोग *मन्दा:* तथा *सुमन्दमतय:* होते हैं अतएव वे हजारों गायों का वध करते हैं। अतएव वे आध्यात्मिक चेतना में हतभाग्य होते हैं और प्रकृति उन्हें नाना प्रकार से विशेषतया कैंसर जैसे असाध्य रोगों से तथा विभिन्न राष्ट्रों में बारम्बार होने वाले युद्धों से विचलित करती रहती है। जब तक मानव समाज कसाईघरों में गायों का लगातार वध होने देगा तब तक शान्ति तथा समृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठ सकता।

ऋषय: कल्पयां चक्रुराभिषेकं यथाविधि ।
जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगु: ॥ १२॥

शब्दार्थ

ऋषय:—ऋषिगण ने; कल्पयाम् चक्रु:—सम्पन्न किया; आभिषेकम्—अभिषेक समारोह, जिसे अर्चाविग्रह की स्थापना के समय किया जाता है; यथा-विधि—जैसाकि प्रामाणिक शास्त्रों में निर्देश हुआ है; जगु:—वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया; भद्राणि—सारा सौभाग्य; गन्धर्वा:—तथा गन्धर्व लोक के निवासी; नट्य:—व्यावसायिक नर्तकियाँ; च—भी; ननृतु:—उस अवसर पर बहुत सुन्दर नृत्य किया; जगु:—वेदों द्वारा बताये प्रामाणिक गीतों को गाया।

ऋषियों ने प्रामाणिक शास्त्रों में निर्दिष्ट विधि से सौभाग्य की देवी (लक्ष्मी) का अभिषेक उत्सव सम्पन्न किया; गन्धर्वों ने सर्वमंगलकारी वैदिक मंत्रों का उच्चारण किया और व्यावसायिक नर्तकियों ने सुन्दर नृत्य किया तथा वेदों द्वारा बताये गये प्रामाणिक गीतों को गाया।

मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ।
व्यनादयन्शङ्खवेणुवीणास्तुमुलनि:स्वनान् ॥ १३॥

शब्दार्थ

मेघा:—साक्षात् बादलों ने; मृदङ्ग—ढोल; पणव—नगाड़े; मुरज—एक अन्य प्रकार का ढोल; आनक—एक अन्य प्रकार का ढोल; गोमुखान्—एक प्रकार की तुरही; व्यनादयन्—बजाया, झंकृत किया; शङ्ख—शंख; वेणु—बाँसुरी; वीणा:—वीणाएँ; तुमुल—कानों को फाड़ने वाली; नि:स्वनान्—ध्वनि।

साक्षात् बादलों ने तरह-तरह के ढोल—यथा मृदंग, पणव, मुरज तथा आनक—बजाये। उन्होंने शंख तथा गोमुख नामक तुरहियाँ भी बजाईं और बाँसुरी तथा वीणा का वादन किया। इन सब वाद्ययंत्रों की सम्मिलित ध्वनि अत्यन्त तुमुलपूर्ण थी।

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ।
दिगिभा: पूर्णकलशै: सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितै: ॥ १४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अभिषिषिचुः—शरीर पर पवित्र जल डाला; देवीम्—लक्ष्मी देवी को; श्रियम्—अत्यन्त सुन्दर; पद्म-कराम्—हाथ में कमल का फूल लिए; सतीम्—भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी को न जानने वाली परम साध्वी सती को; दिगिभाः—बड़े-बड़े हाथी दिग्गज; पूर्ण-कलशैः—जल से पूर्ण पात्रों द्वारा; सूक्त-वाक्यैः—वैदिक मंत्रों से; द्वि-ज—ब्राह्मणों से; ईरितैः—उच्चारित।

तत्पश्चात् सभी दिशाओं के दिग्गज गंगाजल से भरे कलश ले आये और भाग्य की देवी को विद्वान ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित वैदिक मंत्रों के साथ स्नान कराया। स्नान कराये जाते समय लक्ष्मीजी अपनी मौलिक शैली को बनाए रख कर अपने हाथ में कमल धारण किये रहीं और अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं। वे परम सती साध्वी हैं क्योंकि वे भगवान् के अतिरिक्त किसी को नहीं जानतीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में लक्ष्मीजी को *श्रियम्* कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वे षड्ऐश्वर्यों—धन, बल, प्रभाव, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्याग—से युक्त हैं। ये सारे ऐश्वर्य लक्ष्मीजी से प्राप्त किये जाते हैं। लक्ष्मी को यहाँ पर देवी कहा गया है क्योंकि वे वैकुण्ठ लोक में भगवान् तथा उनके भक्तों को सारे ऐश्वर्य प्रदान करती हैं जिससे वे लोग वहाँ का प्राकृतिक जीवन बिताते हैं। भगवान् अपनी प्रिया लक्ष्मी जी से प्रसन्न रहते हैं, जो हाथ में कमल धारण किये रहती हैं। इस श्लोक में माता लक्ष्मी को परम साध्वी सती कहा गया है क्योंकि वे भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी की ओर ध्यान नहीं देतीं।

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ।
वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

समुद्रः—समुद्र ने; पीत-कौशेय—पीला रेशम; वाससी—पोशाक के ऊपर तथा नीचे के भाग; समुपाहरत्—भेंट किया; वरुणः—जल के अधिष्ठाता देवता ने; स्रजम्—माला; वैजयन्तीम्—अत्यन्त अलंकृत तथा बड़ी; मधुना—शहद से; मत्त—मतवाले; षट्-पदाम्—छः पैरों वाले भौंरों को।

समस्त बहुमूल्य रत्नों के स्रोत समुद्र ने उन्हें पीले रेशमी वस्त्र के ऊपर तथा नीचे के भाग प्रदान किये। जल के प्रधान देवता वरुण ने फूलों की मालाएँ प्रदान कीं जिनके चारों ओर मधु पीकर मस्त हुए भौंरे मँडरा रहे थे।

तात्पर्य : *अभिषेक* उत्सव में अर्चाविग्रह को दूध, शहद, दही, घी, गोबर तथा गोमूत्र आदिद्र से नहलाते समय पीले वस्त्र अर्पित किये जाने का रिवाज हैं। इस तरह लक्ष्मीजी का अभिषेक नियमपूर्वक वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार सम्पन्न हुआ।

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ।
हारं सरस्वती पद्मजो नागाश्च कुण्डले ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

भूषणानि—तरह-तरह के गहने; विचित्राणि—सुन्दर ढंग से सजाये हुए; विश्वकर्मा प्रजापतिः—ब्रह्माजी के पुत्रों प्रजापतियों में से एक जिसका नाम विश्वकर्मा था; हारम्—हार; सरस्वती—विद्या की देवी ने; पद्मम्—कमल का फूल; अजः—ब्रह्मा ने; नागाः च—तथा नागलोक के वासियों ने; कुण्डले—कान के दो कुण्डल।

प्रजापति विश्वकर्मा ने तरह-तरह के अलंकृत आभूषण दिये। विद्या की देवी सरस्वती ने गले का हार, ब्रह्माजी ने कमल का फूल तथा नागलोक के वासियों ने कान के कुण्डल प्रदान किये।

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं
नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं
सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; कृत-स्वस्त्ययना—शुभ अनुष्ठानों द्वारा नियमित रूप से पूजी जाकर; उत्पल-स्रजम्—कमलों की माला; नदत्—गुंजार करते; द्विरेफाम्—भौंरों से घिरी; परिगृह्य—पकड़ कर; पाणिना—हाथ से; चचाल—आगे बढ़ी; वक्त्रम्—चेहरा; सु-कपोल-कुण्डलम्—कान के कुण्डलों से अलंकृत गाल; स-व्रीड-हासम्—लज्जा से मुस्काती; दधती—विस्तीर्ण करती; सु-शोभनम्—अपनी प्राकृतिक सुन्दरता को।

तत्पश्चात् शुभ अनुष्ठान द्वारा पूजित माता लक्ष्मी कमलपुष्पों की माला हाथ में लेकर इधर-उधर विचरण करने लगीं जिसके चारों ओर भौंरे मँडरा रहे थे। लज्जा से मुस्काती हुई, कुण्डलों से गाल अलंकृत होने के कारण वे अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं।

तात्पर्य : लक्ष्मीजी ने क्षीरसागर को अपने पिता के रूप में स्वीकार किया, किन्तु वे नारायण के वक्षस्थल पर निरन्तर वास करती हैं। वे ब्रह्माजी तक को तथा इस भौतिक जगत के सारे प्राणियों को वरदान देती हैं फिर भी वे समस्त भौतिक गुणों से परे रहती हैं। यद्यपि वे क्षीरसागर से उत्पन्न हुई प्रतीत होती थी, किन्तु वे तुरन्त ही नारायण के वक्षस्थल पर अपने नित्य स्थान को लौट ठाईं।

स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं
निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ।
ततस्ततो नूपुरवल्गु शिञ्जितै-
र्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८॥

शब्दार्थ

स्तन-द्वयम्—उनके दो स्तन; च—भी; अति-कृश-उदरी—शरीर का मध्य भाग अत्यन्त पतला है, जिसका; समम्—समान रूप से; निरन्तरम्—लगातार; चन्दन-कुङ्कुम—चन्दन तथा लाल रंग के कुंकुम चूर्ण से; उक्षितम्—लेप किया; ततः ततः—यत्र तत्र; नूपुर—पायल का; वल्गु—अत्यन्त सुन्दर; शिञ्जितैः—मन्द झंकार करती; विसर्पती—चलती हुई; हेम-लता—सुनहरी लता; इव—सदृश; सा—वह देवी; बभौ—प्रकट हुई।

उनके संतुलित तथा सुस्थित दोनों स्तन चन्दन तथा कुंकुम चूर्ण से लेपित थे और उनकी कमर अत्यन्त पतली थी। जब वे इधर-उधर चलतीं तो उनके पायल मन्द झंकार करते थे और वे कोई सोने की लता के समान लगती थी।

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः
पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ।
गन्धर्वसिद्धासुरयक्षचारण-
त्रैपिष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥ १९॥

शब्दार्थ

विलोकयन्ती—निरीक्षण करती, देखती; निरवद्यम्—किसी दोष से रहित; आत्मनः—अपने आपको; पदम्—पद; ध्रुवम्—नित्य; च—भी; अव्यभिचारि-सत्-गुणम्—गुणों में बिना किसी परिवर्तन के; गन्धर्व—गन्धर्वलोक के वासियों; सिद्ध—सिद्धलोक के वासियों; असुर—दानवों; यक्ष—यक्षों; चारण—चारण लोक के वासियों; त्रैपिष्टपेय-आदिषु—तथा देवताओं में; न—नहीं; अन्वविन्दत—किसी को स्वीकार कर सकी।

गन्धर्वों, यक्षों, असुरों, सिद्धों, चारणों तथा स्वर्गलोक के वासियों के बीच विचरण करती हुई भाग्य की देवी लक्ष्मीदेवी उन सबका निरीक्षण कर रही थीं, किन्तु उनमें से कोई भी उन्हें समस्त स्वाभाविक उत्तम गुणों से युक्त नहीं मिला। उनमें से कोई भी दोषों से रहित न था अतएव वे किसी की भी शरण ग्रहण नहीं कर सकीं।

तात्पर्य : क्षीरसागर से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मीदेवी सागर की पुत्री थीं; अतएव उन्हें स्वयंवर समारोह में अपना वर स्वयं चुनने की छूट थी। उन्होंने हर प्रत्याशी का निरीक्षण किया, किन्तु किसी को इस योग्य नहीं पाया कि उसकी शरण ग्रहण की जा सके। दूसरे शब्दों में, इस भौतिक संसार में लक्ष्मी के सहज पति नारायण की समता कोई भी नहीं कर सकता।

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो
ज्ञानं क्वचित्तच्च न सङ्गवर्जितम् ।
कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः
स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २०॥

शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही; तपः—तपस्या; यस्य—जिस किसी की; न—नहीं; मन्यु—क्रोध; निर्जयः—जीता हुआ; ज्ञानम्—ज्ञान; क्वचित्—किसी साधु पुरुष में; तत्—वह; च—भी; न—नहीं; सङ्ग-वर्जितम्—संगति के कलुष से रहित; कश्चित्—कोई; महान्—अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति; तस्य—उसका; न—नहीं; काम—भौतिक इच्छाएँ; निर्जयः—विजित; सः—ऐसा व्यक्ति; ईश्वरः—नियन्ता; किम्—वह कैसे हो सकता है; परतः—अन्यों का; व्यपाश्रयः—अधीन।

सभा का निरीक्षण करते हुए लक्ष्मीजी ने इस प्रकार सोचा: जिसने महान् तपस्या की है उसने अभी तक क्रोध पर विजय नहीं पाई। किसी के पास ज्ञान है, तो वह भौतिक इच्छाएँ नहीं जीत पाया। कोई महान् पुरुष है, तो उसने कामेच्छाएँ नहीं जीतीं। यहाँ तक कि महापुरुष भी किसी अन्य बात पर आश्रित रहता है। फिर वह परम नियन्ता (ईश्वर) कैसे हो सकता है?

तात्पर्य : यहाँ पर परम नियन्ता अर्थात् ईश्वर के अनुसन्धान का प्रयास हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर या नियन्ता माना जा सकता है, किन्तु फिर भी ऐसे नियन्ता अन्यों द्वारा नियंत्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, भले ही किसी ने कठोर तपस्या क्यों न की हो फिर भी वह क्रोध के वशीभूत रहता है। विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य वस्तु से नियंत्रित होता है। अतएव भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्ति असली नियन्ता नहीं हो सकता। इसकी पुष्टि शास्त्रों द्वारा होती है। *ईश्वरः परमः कृष्णः*—कृष्ण परम नियन्ता हैं। वे कभी किसी के द्वारा नियंत्रित नहीं होते क्योंकि वे सबके नियन्ता हैं (*सर्वकारणकारणम्*)।

धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं
त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ।
वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं
न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

धर्मः—धर्म; क्वचित्—भले ही पूरा ज्ञान क्यों न हो; तत्र—वहाँ; न—नहीं; भूत-सौहृदम्—अन्य जीवों के साथ मित्रता; त्यागः—त्याग; क्वचित्—किसी के पास भले ही हो; तत्र—वहाँ; न—नहीं; मुक्ति-कारणम्—मुक्ति का कारण; वीर्यम्—बल; न—नहीं; पुंसः—किसी पुरुष का; अस्ति—हो सकता है; अज-वेग-निष्कृतम्—काल की शक्ति से छुटकारा नहीं है; न—न तो; हि—निस्सन्देह; द्वितीयः—दूसरा; गुण-सङ्ग-वर्जितः—प्रकृति के गुणों के कल्मष से पूरी तरह मुक्त।

भले ही किसी के पास धर्म का पूरा ज्ञान क्यों न हो फिर भी वह समस्त जीवों पर दयालु नहीं हो सकता। किसी में, चाहे वह देवता हो या मनुष्य, त्याग हो सकता है, किन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं होता। भले ही किसी में महान् बल क्यों न हो फिर भी वह नित्य काल की शक्ति को रोकने में अक्षम रहता है। भले ही कोई भौतिक जगत की आसक्ति से विरक्त हो चुका हो फिर भी वह भगवान् की बराबरी नहीं कर सकता। अतएव कोई भी व्यक्ति प्रकृति के भौतिक गुणों

के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं है।

तात्पर्य : इस श्लोक में *धर्मः क्वचित् तत्र न भूत सौहृदम्* कथन अत्यन्त सारगर्भित है। हम वास्तव में देखते हैं कि ऐसे कितने ही हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध तथा अन्य सम्प्रदाय वाले धार्मिक लोग हैं, जो अपने-अपने धर्मों का दृढ़ता से पालन करते हैं, किन्तु वे सभी जीवो पर समभाव नहीं रखते। निस्सन्देह, वे अपने को धार्मिक तो कहते हैं, किन्तु बेचारे पशुओं का वध करते रहते हैं। ऐसा धर्म निरर्थक होता है। *श्रीमद्भागवत* का (१.२.८) कथन है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम हि केवलम्॥

कोई अपने सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों को पालने में कितना ही पटु क्यों न हो, किन्तु यदि उसमें भगवान् से प्रेम करने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती तो उसके द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों का पालन समय का अपव्यय मात्र है। मनुष्य को वासुदेव से प्रेम करने की भावना विकसित करनी चाहिए (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)। भक्त का लक्षण यही है कि वह हर एक का मित्र होता है (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*)। भक्त धर्म के नाम पर बेचारे पशुओं का वध नहीं होने देगा। बनावटी धार्मिक पुरुष तथा भगवद्भक्त के बीच यही अन्तर होता है।

हम देखते हैं कि इतिहास में अनेक वीर पुरुष उत्पन्न हुए हैं, किन्तु वे भी क्रूर काल के हाथों से बच नहीं पाये। यहाँ तक कि सबसे बड़ा वीर पुरुष भी, जब कृष्ण काल-रूप में आते हैं, भगवान् की शासनशक्ति से बच नहीं सकता। इसका वर्णन स्वयं कृष्ण ने किया है—*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*—भगवान् मृत्यु रूप में प्रकट होकर वीर पुरुष की तथाकथित शक्ति को छीन लेते हैं। यहाँ तक कि हिरण्यकशिपु भी अपने को नहीं बचा पाया जब उसके समक्ष नृसिंहदेव कालरूप में प्रकट हुए। किसी की भौतिक शक्ति या पराक्रम भगवान् की शक्ति के सामने शून्य है।

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं
क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ।
यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः
सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

क्वचित्—कोई; चिर-आयुः—दीर्घआयु वाला; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; शील-मङ्गलम्—अच्छा आचरण या कल्याण; क्वचित्—कोई; तत् अपि—अच्छा आचरण होते भी; अस्ति—है; न—नहीं; वेद्यम् आयुषः—उम्र की अवधि से परिचित; यत्र उभयम्—यदि दोनों हुए (आचरण तथा मंगल); कुत्र—कहाँ; च—भी; सः—वह व्यक्ति; अपि—यद्यपि; अमङ्गलः—किसी और बात में अशुभ; सु-मङ्गलः—प्रत्येक प्रकार से शुभ; कश्च—कोई; न—नहीं; काङ्क्षते—इच्छा करता है; हि—निस्सन्देह; माम्—मुझको।.

हो सकता है कि कोई दीर्घायु हो, किन्तु वह अच्छे आचरण वाला या मंगलमय न हो। किसी में मंगलमय तथा अच्छा आचरण दोनों ही पाये जा सकते हैं, किन्तु उसकी आयु की अवधि निश्चित नहीं होती। यद्यपि शिवजी जैसे देवताओं का जीवन शाश्वत होता है, किन्तु उनकी आदतें अमंगल सूचक होती हैं—यथा श्मशान में वास। अन्य लोग सभी प्रकार से योग्य होते हुए भी भगवान् के भक्त नहीं होते।

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणै-
वरं निजैकाश्रयतयागुणाश्रयम् ।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं
रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; विमृश्य—विचार-विमर्श के बाद; अव्यभिचारि-सत्-गुणैः—अद्वितीय दिव्य गुणों से; वरम्—श्रेष्ठ; निज-एक-आश्रयतया—अन्यों पर आश्रित न रहकर समस्त गुणों से युक्त होने के कारण; अगुण-आश्रयम्—समस्त दिव्य गुणों का आगार; वव्रे—स्वीकार किया; वरम्—दूल्हे के रूप में; सर्व-गुणैः—समस्त दिव्य गुणों के साथ; अपेक्षितम्—योग्य; रमा—भाग्य की देवी ने; मुकुन्दम्—मुकुन्द को; निरपेक्षम्—यद्यपि उन्होंने उसकी प्रतीक्षा नहीं की; ईप्सितम्—सर्वाधिक वांछनीय।.

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार पूरी तरह विचार-विमर्श करने के बाद भाग्य की देवी (लक्ष्मी) ने मुकुन्द को पति रूप में वरण कर लिया क्योंकि यद्यपि वे स्वतंत्र हैं और उन्हें उनकी कमी भी नहीं खलती थी वे समस्त दिव्य गुणों और योग शक्तियों से युक्त हैं, अतएव सर्वाधिक वांछनीय हैं।

तात्पर्य : भगवान् मुकुन्द आत्मनिर्भर हैं। चूँकि वे पूर्णतया स्वतंत्र हैं अतएव उन्हें न ही उनके लक्ष्मीदेवी के आश्रय की आवश्यकता थी न ही उनके सान्निध्य की। फिर भी लक्ष्मीदेवी ने उन्हें पति रूप में स्वीकार किया।

तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां
माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ।
तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम

सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥ २४॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (भगवान् के); अंस-देशे—कंधों पर; उशतीम्—अत्यन्त सुन्दर; नव—नई; कञ्ज-मालाम्—कमल के फूलों की माला को; माद्यत्—मदान्ध; मधुव्रत-वरूथ—भौंरों की; गिरा—ध्वनि से; उपघुष्टाम्—गुंजार से घिरा; तस्थौ—कर रहा; निधाय—माला रखकर; निकटे—पास ही; तत्-उरः—भगवान् का वक्षस्थल; स्व-धाम—अपना असली निवास; स-व्रीड-हास—लज्जा से हँसते हुए; विकसत्—चमकते; नयनेन—आँखों से; याता—इस प्रकार स्थित।

भगवान् के पास जाकर लक्ष्मीजी ने नवीन कमल पुष्पों की माला उनके गले में पहना दी जिसके चारों ओर मधु की खोज में भौंरें गुंजार कर रहे थे। तब भगवान् के वक्षस्थल पर स्थान पाने की आशा से वे उनकी बगल में खड़ी रहीं और उनका मुख लज्जा से मुस्का रहा था।

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या
वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन
यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसका; श्रियः—लक्ष्मी; त्रि-जगतः—तीनों लोक के; जनकः—पिता; जनन्याः—माता का; वक्षः—वक्षस्थल; निवासम्—निवास; अकरोत्—बनाया; परमम्—परम; विभूतेः—ऐश्वर्यवान का; श्रीः—लक्ष्मी; स्वाः—अपने; प्रजाः—वंशज; स-करुणेन—करुणा से युक्त; निरीक्षणेन—दृष्टि फेरते हुए; यत्र—जहाँ; स्थिता—रहते हुए; ऐधयत—वृद्धि की; स-अधिपतीन्—महान् निदेशकों तथा नेताओं सहित; त्रि-लोकान्—तीनों लोकों को।

भगवान् तीनों लोकों के पिता हैं और उनका वक्षस्थल समस्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भाग्य की देवी माता लक्ष्मी का निवास है। लक्ष्मीजी अपनी अनुकूल तथा कृपापूर्ण चितवन से तीनों लोकों तथा उनके निवासियों और अधिपतियों—देवताओं—के ऐश्वर्य को बढ़ा सकती हैं।

तात्पर्य : लक्ष्मीजी की इच्छानुसार भगवान् ने अपने वक्षःस्थल को उनका वासस्थान बना दिया जिससे वे अपनी चितवन से हर एक को—देवताओं तथा सामान्य मनुष्यों को—भी उपकृत कर सकें। दूसरे शब्दों में, चूँकि लक्ष्मीजी नारायण के वक्षस्थल पर निवास करती हैं अतएव जो भी भक्त नारायण की पूजा करता है उसे वे देखती रहती हैं। जब वे यह जान लेती हैं कि कोई भक्त नारायण की भक्ति करने के पक्ष में है, तो वे उसे सारे ऐश्वर्य का सहज वरदान देने को उद्यत हो जाती हैं। *कर्मीजन* लक्ष्मी की कृपा तथा पक्षी पाने का प्रयास करते हैं, किन्तु नारायण के भक्त न होने से उनका ऐश्वर्य डगमगा जाता है। नारायण की सेवा में लिप्त रहने वाले भक्तों का ऐश्वर्य *कर्मियों* जैसा नहीं होता। भक्तों का ऐश्वर्य उतना ही स्थायी होता है जितना की स्वयं नारायण का है।

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ।
देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; तूर्य—तुरही; मृदङ्गानाम्—तथा विभिन्न प्रकार के ढोलों का; वादित्राणाम्—वाद्य-यंत्रों की; पृथुः—अत्यधिक; स्वनः—ध्वनि; देव-अनुगानाम्—उच्चलोकों (गंधर्व तथा चारण लोक) के निवासी जो देवताओं के अनुयायी होते हैं; स-स्त्रीणाम्—अपनी-अपनी पत्नियों के साथ; नृत्यताम्—नाचने में व्यस्त; गायताम्—गाते हुए; अभूत्—हो गये।

तब गन्धर्व तथा चारण लोकों के निवासियों ने अपने-अपने वाद्य यंत्र—यथा शंख, तुरही तथा ढोल—बजाये। वे अपनी-अपनी पत्नियों के साथ नाचने गाने लगे।

ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ।
ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्म—ब्रह्माजी; रुद्र—शिवजी; अङ्गिरः—अंगिरा मुनि; मुख्याः—आदि; सर्वे—सभी ने; विश्व-सृजः—विश्व की व्यवस्था के निदेशक; विभुम्—महान् पुरुष को; ईडिरे—पूजा की; अवितथैः—असली; मन्त्रैः—उच्चारण द्वारा; तत्-लिङ्गैः—उन भगवान् को पूजकर; पुष्प-वर्षिणः—पुष्पों की वर्षा करके।

ब्रह्मा जी, शिव जी, अंगिरा मुनि तथा विश्व व्यवस्था के ऐसे ही निदेशकों ने फूल बरसाये और भगवान् की दिव्य महिमा के सूचक मंत्रों का उच्चारण किया।

श्रियावलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ।
शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्रिया—लक्ष्मी द्वारा; अवलोकिताः—कृपापूर्वक देखे जाने पर; देवाः—सारे देवता; स-प्रजापतयः—प्रजापतियों सहित; प्रजाः—तथा उनकी सन्तानें; शील-आदि-गुण-सम्पन्नाः—सबके सब अच्छे आचरण तथा अच्छे लक्षणों से सम्पन्न; लेभिरे—प्राप्त किया; निर्वृतिम्—संतोष; पराम्—चरम।

सभी प्रजापतियों तथा उनकी प्रजा सहित सारे देवता लक्ष्मीजी की चितवन से धन्य होकर तुरन्त ही अच्छे आचरण तथा दिव्य गुणों से सम्पन्न हो गये। इस तरह वे अत्यधिक सन्तुष्ट हो गये।

निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ।
यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

निःसत्त्वाः—बलहीन; लोलुपाः—अत्यन्त लालची; राजन्—हे राजा; निरुद्योगाः—हताश; गत-त्रपाः—लज्जाहीन; यदा—जब; च—भी; उपेक्षिताः—उपेक्षित; लक्ष्म्या—लक्ष्मीजी द्वारा; बभूवुः—हो गये; दैत्य-दानवाः—असुर तथा राक्षसगण।

हे राजा! लक्ष्मी द्वारा उपेक्षित हो जाने पर असुर तथा राक्षस अत्यन्त निराश, मोहग्रस्त तथा

हतप्रभ हो गये और इस तरह वे निर्लज्ज बन गये।

अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ।
असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात् (लक्ष्मीजी के प्रकट होने के बाद); आसीत्—था; वारुणी—वारुणी; देवी—देवपत्नी जो मद्यपों को वश में रखती है; कन्या—तरुणी; कमल-लोचना—कमल जैसे नेत्र वाली; असुराः—असुरों ने; जगृहुः—स्वीकार कर लिया; ताम्—उसको; वै—निस्सन्देह; हरेः—भगवान् के; अनुमतेन—आदेश से; ते—वे (राक्षस)।

तब कमलनयनी देवी वारुणी प्रकट हुई जो मद्यपों को वश में रखती है। भगवान् कृष्ण की अनुमति से बलि महाराज इत्यादि असुरों ने उस तरुणी को अपने अधिकार में ले लिया।

अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; उदधेः—क्षीरसागर से; मथ्यमानात्—मथने से; काश्यपैः—कश्यप के पुत्रों अर्थात् देवताओं तथा असुरों द्वारा; अमृत-अर्थिभिः—मन्थन से अमृत पाने के लिए उत्सुक; उदतिष्ठत्—वहाँ प्रकट हुआ; महाराज—हे राजा; पुरुषः—एक पुरुष; परम—अत्यन्त; अद्भुतः—अद्भुत।

हे राजा! तत्पश्चात् जब कश्यप के पुत्र—असुर तथा देवता—दोनों ही क्षीरसागर के मन्थन में लगे हुए थे तो एक अत्यन्त अद्भुत पुरुष प्रकट हुआ।

दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

दीर्घ—लम्बा; पीवर—बलिष्ठ; दोः-दण्डः—भुजाएँ; कम्बु—शंख के समान; ग्रीवः—गर्दन; अरुण-ईक्षणः—लाल-लाल आँखें; श्यामलः—काले रंग का; तरुणः—नौजवान; स्रग्वी—फूलों की माला पहने; सर्व—समस्त; आभरण—गहनों से; भूषितः—अलंकृत।

उसका शरीर सुदृढ़ था; उसकी भुजाएँ लम्बी तथा बलिष्ठ थीं; उसकी शंख जैसी गर्दन में तीन रेखाएँ थीं; उसकी आँखें लाल-लाल थीं और उसका रंग साँवला था। वह अत्यन्त तरुण था, उसके गले में फूलों की माला थी तथा उसका सारा शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित था।

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।

स्निग्धकुञ्चितकेशान्तसुभगः सिंहविक्रमः ।
अमृतापूर्णकलसं बिभ्रद्वलयभूषितः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

पीत-वासाः—पीले वस्त्र पहने; महा-उरस्कः—चौ वक्षस्थल वाला; सु-मृष्ट-मणि-कुण्डलः—मोतियों के बने पालिश किए हुए कुण्डल पहने; स्निग्ध—चिकना; कुञ्चित-केश—घुंघराले बाल; अन्त—सिरे पर; सु-भगः—पृथक् तथा सुन्दर; सिंह-विक्रमः—सिंह की भाँति बलवान्; अमृत—अमृत से; आपूर्ण—लबालब; कलसम्—कलश; बिभ्रत्—चलायमान; वलय—बाजूबंद; भूषितः—सुशोभित।

वह पीले वस्त्र पहने था और उसके कानों में मोतियों के बने पालिश किए हुए कुण्डल थे। उसके बालों के सिरे तेल से चुपड़े थे और उसका वक्षस्थल अत्यन्त चौड़ा था। उसका शरीर अत्यन्त सुगठित तथा सिंह के समान बलवान् था। उसने बाजूबंद पहन रखे थे। उसके हाथ में अमृत से पूर्ण कलश था।

स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः ।
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेदद्दगिज्यभाक् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; वै—निस्सन्देह; भगवतः—भगवान् का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; अंश-अंश-सम्भवः—स्वांश के स्वांश का अवतार; धन्वन्तरिः—धन्वन्तरि; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; आयुः-वेद-दृक्—औषधि विज्ञान में पटु; इज्य-भाक्—यज्ञ में भाग पाने का अधिकारी देवता।

यह व्यक्ति धन्वन्तरि था, जो भगवान् विष्णु के स्वांश का स्वांश था। वह औषधि विज्ञान (आयुर्वेद) में अत्यन्त पटु था और देवता के रूप में यज्ञों में भाग पाने का अधिकारी था।

तात्पर्य : *श्रील मध्वाचार्य* की टीका है—

तेषां सत्याच्चालनार्थं हरिर्धन्वन्तरिर्विभुः ।

समर्थोऽप्यसुराणां तु स्वहस्तादमुचत्सुधाम् ॥

हाथ में अमृत का घट लिए धन्वन्तरि भगवान् का स्वांश अवतार था। यद्यपि वह अत्यन्त बलशाली था, किन्तु असुरगण उसके हाथ से अमृत घट छीन लेने में सफल हुए।

तमालोक्यासुराः सर्वे कलसं चामृताभृतम् ।
लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलसं तरसाहरन् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आलोक्य—देखकर; असुराः—असुरों ने; सर्वे—सभी; कलसम्—अमृत पात्र को; च—भी; अमृत-आभृतम्—अमृत से पूर्ण; लिप्सन्तः—प्रबल इच्छा करते; सर्व-वस्तूनि—सारी वस्तुएँ; कलसम्—पात्र; तरसा—तुरन्त; अहरन्—छीन लिया।

धन्वन्तरि को अमृत पात्र लिये हुए देखकर असुरों ने पात्र तथा उसके भीतर जो कुछ था उसे चाहने के कारण तुरन्त ही उसे बलपूर्वक छीन लिया।

नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलसेऽमृतभाजने ।
विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

नीयमाने—ले जाया जाकर; असुरैः—असुरों द्वारा; तस्मिन्—उस; कलसे—पात्र में; अमृत-भाजने—अमृत से भरे; विषण्ण-मनसः—खिन्न मन से; देवाः—सारे देवता; हरिम्—भगवान् की; शरणम्—शरण में; आययुः—गये।

जब अमृत का पात्र असुरों द्वारा छीन लिया गया तो देवतागण अत्यन्त खिन्न हो गए। उन्होंने जाकर भगवान् हरि के चरणकमलों की शरण ली।

इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; तत्—देवताओं की; दैन्यम्—खिन्नता, विषाद; आलोक्य—देखकर; भगवान्—भगवान्; भृत्य-काम-कृत्—जो अपने सेवकों की इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं; मा खिद्यत—मत दुखी होओ; मिथः—झगड़े से; अर्थम्—अमृत प्राप्त करने के लिए; वः—तुम सबके लिए; साधयिष्ये—सम्पन्न करूँगा; स्व-मायया—अपनी शक्ति से।

अपने भक्तों की मनोकामनाओं को सदा पूरा करने की इच्छा रखने वाले भगवान् ने जब यह देखा कि देवतागण खिन्न हैं, तो उन्होंने उनसे कहा ''दुःखी मत होओ। मैं अपनी शक्ति से असुरों में झगड़ा करा कर उन्हें मोहग्रस्त कर लूँगा। इस प्रकार तुम लोगों की अमृत प्राप्त करने की इच्छा मैं पूरी कर दूँगा।''

मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

मिथः—परस्पर; कलिः—असहमति तथा कलह; अभूत्—हुआ; तेषाम्—उन सबका; तत्-अर्थे—अमृत के लिए; तर्ष-चेतसाम्—विष्णु की माया से मोहग्रस्त चित्त; अहम्—मैं; पूर्वम्—पहले; अहम्—मैं; पूर्वम्—पहले; न—नहीं; त्वम्—तुम; न—नहीं; त्वम्—तुम; इति—इस प्रकार; प्रभो—हे राजा।

हे राजा! तब असुरों के बीच झगड़ा छिड़ गया कि सबसे पहले कौन अमृत ले। उनमें से हर एक यही कहने लगा ''तुम पहले नहीं पी सकते। मुझे सबसे पहले पीना चाहिए। तुम नहीं, पहले मैं।''

तात्पर्य : यह असुरों का लक्षण है। अभक्त की पहली चिन्ता यही रहती है कि सर्वप्रथम अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति कैसे की जाये जबकि भक्त की सर्वोपरि चिन्ता भगवान् को प्रसन्न करने के लिए होती है। अभक्त तथा भक्त में यही अन्तर है। चूँकि इस जगत में अधिकांश लोग अभक्त हैं अतएव वे निरन्तर स्पर्धा करते एवं लड़ते-झगड़ते रहते हैं क्योंकि हर एक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का भोग करके तुष्ट होना चाहता है। अतएव जब तक ऐसे असुर कृष्णभावनाभावित नहीं हो जाते और भगवान् की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर लते तब तक मानव समाज या किसी भी समाज में, भले ही वह देवताओं का क्यों न हो, शान्ति नहीं हो सकती। किन्तु भक्त तथा देवता सदैव भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं; अतएव भगवान् उनकी मनोकामनाओं को तुष्ट करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं। असुरगण अपनी इन्द्रियों की तुष्टि के लिए लड़ते-झगड़ते हैं, किन्तु भक्तगण भक्ति में लगे रहकर भगवान् की इन्द्रियों की तुष्टि करने में लगे रहते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों को इस ओर सतर्क रहना होगा; तभी उनका इस आन्दोलन का प्रचार-कार्य सफल हो सकेगा।

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ।
सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥
इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ।
दुर्बलाः प्रबलान्राजन्गृहीतकलसान्मुहुः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

देवाः—देवता; स्वम् भागम्—अपना-अपना हिस्सा; अर्हन्ति—लेने के अधिकारी हैं; ये—जो-जो; तुल्य-आयास-हेतवः—जिन्होंने समान प्रयास किया है; सत्र-यागे—यज्ञ सम्पन्न करने में; इव—उसी प्रकार; एतस्मिन्—इस मामले में; एषः—यह; धर्मः—धर्म; सनातनः—शाश्वत; इति—इस प्रकार; स्वान्—अपनों में; प्रत्यषेधन्—एक दूसरे को मना किया; वै—निस्सन्देह; दैतेयाः—दिति के पुत्र; जात-मत्सराः—ईष्यालु; दुर्बलाः—निर्बल; प्रबलान्—बलपूर्वक; राजन्—हे राजा; गृहीत—ग्रहण किये; कलसान्—अमृत पात्र को; मुहुः—निरन्तर।

कुछ असुरों ने कहा ''सभी देवताओं ने क्षीरसागर के मन्थन में हाथ बँटाया है। चूँकि हर एक को समान अधिकार है कि वह किसी भी सार्वजनिक यज्ञ में भाग लें अतः सनातन धर्म के अनुसार यह उचित होगा कि अमृत में देवताओं को भी भाग मिले।'' हे राजा! इस प्रकार निर्बल असुरों ने प्रबल असुरों को अमृत लेने से मना किया।

तात्पर्य : अमृत पाने की इच्छा वाले निर्बल असुरों ने देवताओं के पक्ष में बातें कहीं। स्वाभाविक था कि निर्बल दैत्यों ने प्रबल दैत्यों को बिना बँटवारा किये अमृत पीने से रोकने के लिए देवताओं का

समर्थन किया। इस प्रकार जब एक दूसरे को अमृत पीने से रोका गया तो असहमति से झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ।
योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधारपरमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥
प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ।
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥
नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् ।
मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥
बिभ्रत्सुकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् ।
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥ ४४ ॥
विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया ।
काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥
सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ।
दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एतस्मिन् अन्तरे—इस घटना के बाद; विष्णुः—भगवान् विष्णु ने; सर्व-उपाय-वित्—विभिन्न परिस्थितियों से निपटने में पटु; ईश्वरः—परम नियन्ता; योषित्-रूपम्—सुन्दर स्त्री का रूप; अनिर्देश्यम्—कोई यह निश्चित नहीं कर सका कि वह कौन थी; दधार—धारण कर लिया; परम—परम; अद्भुतम्—अद्भुत; प्रेक्षणीय—देखने में सुहावना; उत्पल-श्यामम्—नवीन विकसित कमल के समान श्याम रंग का; सर्व—सारे; अवयव—शरीर के अंग; सुन्दरम्—अत्यन्त सुन्दर; समान—एकसमान; कर्ण-आभरणम्—कान के आभूषण; सु-कपोल—सुन्दर गाल; उन्नस-आननम्—मुखमण्डल में उभरी नाक; नव-यौवन—नवीन युवावस्था; निर्वृत्त-स्तन—स्थिर उरोज; भार—भार; कृश—अत्यन्त दुबली तथा पतली; उदरम्—कमर; मुख—मुखमण्डल; आमोद—आनन्द उत्पादक; अनुरक्त—आकृष्ट; अलि—भौंरे; झङ्कार—गुन-गुन की आवाज करते; उद्विग्न—चिन्ता से; लोचनम्—उसकी आँख; बिभ्रत्—चलायमान; सु-केश-भारेण—सुन्दर बालों के भार से; मालाम्—फूल की माला से; उत्फुल्ल-मल्लिकाम्—पूर्ण विकसित मल्लिका के फूलों से बनी; सु-ग्रीव—सुन्दर गर्दन; कण्ठ-आभरणम्—सुन्दर रत्नों से जटित; सु-भुज—सुन्दर भुजाएँ; अङ्गद-भूषितम्—बाजूबंदों से सज्जित; विरज-अम्बर—अत्यन्त स्वच्छ वस्त्र; संवीत—फैला; नितम्ब—नितम्ब; द्वीप—द्वीप की तरह लगने वाला; शोभया—ऐसी सुन्दरता से; काञ्च्या—करधनी; प्रविलसत्—फैली हुई; वल्गु—अत्यन्त सुन्दर; चलत्-चरण-नूपुरम्—हिलते-डुलते पायल; स-व्रीड-स्मित—सलज्ज हास; विक्षिप्त—दृष्टि फेरते; भ्रू-विलास—भौंहों का क्रियाकलाप; अवलोकनैः—देखने से; दैत्य-यूथ-प—असुरों के नायक; चेतःसु—हृदय में; कामम्—कामेच्छा; उद्दीपयत्—जगाते हुए; मुहुः—निरन्तर।

तब, किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करने में दक्ष भगवान् विष्णु ने एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लिया। स्त्री के रूप में यह अवतार—मोहिनी मूर्ति—मन को भाने वाला था। उसका रंग नव-विकसित श्यामल कमल के रंग का था और उसके शरीर का हर अंग सुन्दर ढंग से बना था। उसके कानों में कुण्डल सजे थे, उसके गाल अतीव सुन्दर थे, उसकी नाक उठी हुई थी और उसका मुखमण्डल युवावस्था की कान्ति से युक्त था। उसके बड़े-बड़े

स्तनों के कारण उसकी कमर अत्यन्त पतली लगती थी। उसके मुख तथा शरीर की सुगंधि से आकर्षित भौरें उसके चारों ओर गुनगुना रहे थे और उसकी आँखें चंचल थीं। उसके बाल अत्यन्त सुन्दर थे और उन पर मल्लिका के फूलों की माला पड़ी थी। उसकी आकर्षक गर्दन हार तथा अन्य आभूषणों से सुशोभित थी; उसकी बाँहों में बाजूबंद शोभित हो रहे थे; उसका शरीर स्वच्छ साड़ी से ढका था और उसके स्तन सुन्दरता के सागर में द्वीपों की तरह प्रतीत हो रहे थे। उसके पाँवों में पायल शोभा दे रहे थे। जब वह लज्जा से हँसती और असुरों पर बाँकी चितवन फेरती तो उसकी भौंहों के हिलने से सारे असुर कामेच्छा से पूरित हो उठते और उनमें से हर एक उसे अपना बनाने की इच्छा करने लगा।

तात्पर्य : असुरों में काम-भावना जगाने के लिए भगवान् ने सुन्दर स्त्री का जो रूप धारण किया उसकी सुन्दरता का यहाँ पूरा वर्णन किया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''क्षीरसागर का मन्थन'' नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।